साहित्य और जीवन : श्रेय मूल्य एवं समाजगत रचना–धर्मिता का विश्लेषण

डॉ. विद्यासागर उपाध्याय

काव्य रूप, शब्द, रस, घ्राण, स्पर्श, स्वाद और कल्पना के आनंद के ताने–बाने से बना ऐसा मनोज्ञ कुसुम है जिसमें भावात्मक, बौद्धिक और रसात्मक आदर्श की सुषमा सन्निवेशित कर दी जाती है। साहित्य वह कानन स्थली है जिसमें पार्थिव सुषमा नैतिकता द्वारा अधिशासित हो और बुद्धि सौंदर्य भावना से ओत–प्रोत हो। साहित्य, ऐन्द्रिकता का विलास मात्र नहीं है वरन् यह इन्द्रियपरक माधुर्य से छककर निःसृत उस निर्झर के समान है जो उदात्त बिन्दुओं का स्पंदन पाठक के मन में जगाती है। रूप को पार्थिव जड़ता से मुक्त कर अध्यात्म के स्तर तक पहुँचाने वाला कवि ही सच्चा मनीषी कहलायेगा। कवि कुलगुरु कालिदास का यह वचन आज भी काव्य की कसौटी बन सकता है– **''यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये, न रुपमित्यव्यभिचारि तद्वचः।।''**

साहित्य वह नहीं है जो उन्मत्त सौंदर्य से प्लावित हो वरन् सच्चा साहित्य तो वह है जिसमें रुपासक्ति भस्म हो गयी हो और सौंदर्य की निर्मल कांति का उच्छ्वास अभिव्यक्त हुआ हो।

आधुनिक विज्ञान का द्रुतगति से बढ़ता हुआ मानव अपने चिरसंचित साहित्य की सुरक्षा कर सकेगा या नहीं ? यह प्रश्न आज प्रत्येक विचारशील मानव मस्तिष्क का मुख्य विषय हो गया है। भौतिक जगत् में चरमोन्नति के प्रकर्ष पर पहुँचने के पश्चात् भी पृथ्वी, जल, वायु, आकाश में आश्चर्यजनक अनुसंधान करके भी, ऐसा प्रतीत होता है कि मानव का जीवन पल भर के लिये भी शांत नहीं है। जगती तल के इस समग्र चैतन्यलोक में मानव ही सुंदरतम प्राणी है। जिस मानव की सौंदर्य–सुषमा के अवलोकन से अभिभूत होकर पंत जी की अनुभूति इन शब्दों में गूंज उठी थी–

सुंदर है विहग, सुमन, सुंदर, मानव! तम सबसे सुंदरतम।
निर्मित सबकी तिल–सुषमा से, तू निखिल सृष्टि में चिर निरुपम।''[1]

आज उसी सुंदरतम मानव जीवन की स्निग्धता, सरलता, मृदूलता, करुणा आदि कोमल भावनाएं सतत् संचरणशील यंत्रों के अनवरत संसर्ग से पिसकर चूर्ण होती जा रही है। किंतु मानव का अस्तित्व केवल यंत्रों के समान अविरत अंग परिचालन एवं हृदयकंपन में ही नहीं है। ये सब तो मानव के पार्थिव अस्तित्व के मांस–मज्जामय अस्थिपिंजर हैं, मृतक प्राणी के शवजाल हैं; निष्प्राण मृतिका के ढेर हैं। जीवन स्वयं एक कला एवं अनुभूति है जिसकी अभिव्यक्ति विज्ञान और राजनीति के क्षेत्र में न होकर किसी और ही क्षेत्र में होती है। जहाँ कठोरता भी हे और कोमलता भी, शुष्कता भी है और सरसता भी, क्रोध भी और प्रेम भी, पौरुष भी और कारुण्य भी, मान भी और अनुनय भी, वियोग की व्याकुलता भी और संयोग की स्निग्ध मादकता भी। मानव हृदय के इन कोमल और कठोर भावों के संघर्ष में विजय कोमल भावों को ही सदा मिलती रहती है, यही उस अनिवर्चनीय क्षेत्र की महत्ता है जिसे साहित्य कहते हैं।

मानव की आत्म तथा अनात्म भावनाओं की अभिव्यक्ति को ही साहित्य कहते हैं। वह किसी देश, समाज तथा व्यक्ति का सामयिक समर्थन नहीं है, वरन् वह सार्वदेशिक और सार्वकालिक गुणों से अनुप्राणित रहता है। मानव मात्र में जो प्रमुख इच्छाएँ, कामनाएँ तथा भावनाएँ हैं, वे ही साहित्य की स्थायी संपत्ति हैं। युगों–युगों से मानवता की यही भावनाएँ साहित्य की संज्ञा पाती चली आ रही है। यदि साहित्य को विश्व मानव का हृदय कहें तो अत्युक्ति नही होगी क्योकि उसमें हमारे व्यक्तिगत हृदय की भांति ही सुख–दुःख, आशा–निराशा, भय–निर्भयता एवं अश्रु–ह्रास का स्पष्ट स्पंदन रहता है। इसी से भाषा रूपी शरीर की भिन्नता होते हुए भी हम संपूर्ण विश्व साहित्य में भावों, विचारों और आदर्शों का सनातन साम्य पाते हैं। संसार के भिन्न–भिन्न राष्ट्रों में जातिगत, वर्णगत और धर्मगत चाहे जितनी भी बाह्य भिन्नता क्यों न हो, किन्तु आंतरिक रूप से हमारी भावधारा और जीवन–मरण

की समस्या एक–जैसी है। प्राकृतिक रहस्यों को देखकर चकित होना, प्राकृतिक सौंदर्य से पुलकित होना, सभी के लिये, सभी देशों में समान है।

निःसंदेह साहित्य का क्षेत्र अत्यंत विशाल है। मानव जीवन की विशालता ही साहित्य जीवन की परिधि है। बिना किसी बलवान निमित्त के वह किसी भी प्रवृत्ति के लिये उद्योगशील नहीं होता, उसी प्रकार साहित्य भी मानव का निष्प्रयोजन प्रयास नहीं है। जिस प्रकार जीवन के प्रयोजनों की कोई सीमा नहीं, उसी प्रकार साहित्य के प्रयोजन भी असंख्य हो सकते हैं। यद्यपि भारतीय शास्त्रों ने निष्कामना की महिमा गायी है तथापि यह मानना पड़ेगा कि व्यवहार में कोई भी कार्य निष्प्रयोजन नहीं होता– ''प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते।'' किन्तु जहाँ महाकवि तुलसीदास ने **'स्वांतः सुखाय'** रामचरित मानस की रचना की, वहीं वे उसी काव्य को श्रेष्ठ मानते हैं जिसमें सुरसरिता की भांति शिवत्व की भावना हो–**''कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहं हितु होई।''**[2]

स्वंय 'साहित्य' शब्द भी अपने मूल में हेतुमूलक प्रवृत्ति की ओर संकत करता है। सहित होने के भाव को साहित्य कहते हैं– **''सहितस्य भावः साहित्यं''**। सहित के दो अर्थ हैं–(1) साथ होना और (2) 'हितेन सह सहितं' अर्थात् जिससे हित का संपादन हो 'हितेन सह सहितं के अर्थ को प्रधानता देते हुए यह स्पष्ट होता है कि साहित्य वह है जिससे मानव हित का संपादन हो अस्तु, शिवत्व की प्रयोजनीयता–मूलक भावना तो 'साहित्य' शब्द में रस की भांति स्वाभाविक रूप से विद्यमान है।

भारतीय आचार्यों के अनुसार जीवन की भांति साहित्य के भी द्विविध प्रयोजन हैं। उनमें एक की उपयोगिता हमारे बाह्य यथार्थ जीवन में है और दूसरे की हमारे आध्यात्मिक अंतर्जीवन में। इनमें अंतर केवल उतना ही है कि जीवन के प्रयोजन सीमित तथा देश काल की परिस्थितियों से घिरे रहते हैं और साहित्य के प्रयोजन एकता में अनेकता समेटे रहते हैं। पीछे की ओर देखने से प्रयोजन प्रेरणाएं बन जाती हैं और भविष्य में स्थित प्रेरणाएं प्रयोजन हैं। साहित्य के प्रयोजन तथा जीवन के प्रयोजन के अंतिम लक्ष्य की यदि एक ही समस्याएँ हैं तो यह प्रश्न स्वयमेव उठता है कि क्या साहित्य मानवता के विशाल जीवन के लिये कुछ उपयोगी उपकरणों का नियोजन भी करता है अथवा नहीं? क्या वह मानव सभ्यता को किसी प्रकार आगे या पीछे बढ़ाता है अथवा नहीं ? अथवा साहित्य एक मात्र व्यक्तिगत आनंद या मनोविनोद की वस्तु है ?

मानव जीवन का लक्ष्य केवल जीकर मरना नहीं वरन् जीवन में सत्य की प्रतिष्ठा करना है। उपनिषदों दर्शन के अनुसार एकमात्र सत्य ब्रह्म है, किंतु यह सत्य विश्व में सर्वत्र प्रतिभासित हो रहा है। यह सत्य रूपी ब्रह्म या ब्रह्मरूपी सत्य प्राणीमात्र की चिरवांछित वस्तु है। उस नित्य ब्रह्म से समस्त विश्व उत्पन्न होता है।[3] वस्तुतः सौंदर्य की महत्ता सत्य से है। सत्य की उपलब्धि जीवन का लक्ष्य है। काव्य और काव्य की सार्थकता जीवन को सुसम्पन्न, सतत् प्रयत्नशील और चिरमंगलमय बनाने में है।

साहित्य सृजन के मूल में मानव–आत्मा को 'सत्यं शिवं तथा सुंदरं' के उपार्जन की तीव्र आकांक्षा है। सौदर्य के उद्दीपन से जब जीवन के संचित अभाव अभिव्यक्ति के लिये फूट पड़ते हैं तभी काव्य का प्रस्फुटन होता है। सत्यं, शिवं और सुंदरं के अभाव में पीड़ा की जो तीव्रता बढ़ती है उसकी अनुभूति मानव को व्यक्तिगत पीड़ा की सीमाओं से ऊपर उठाकर प्राणी मात्र की पीड़ा के साम्राज्य में ले जाती है। आदि कवि वाल्मीकि ऋषि को निज व्यक्तिगत पीड़ा नहीं थी किन्तु क्रौंच वध के करुण दृश्य को देखकर कविता का प्रथम स्फुरण हुआ–

''मा निषाद! प्रतिष्ठांत्वमगमः शाश्वती समाः,
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।''

इसमें काम मोहित अवस्था में क्रोंच के वध से उत्पन्न करुणा की प्रेरणा स्वीकृत की गयी है,– साधारण वध से उत्पन्न करुणा नहीं। अर्थात् इस करुणा में काम का अर्न्तसूत्र है। करुणा अभाव तथा काम आनंद का प्रतीक है। श्रम और शोकार्न्त तपस्वियों के क्लेद् के निवारणार्थ नाट्य–काव्य की रचना हुई है। अभाव की पीड़ा और आनंद के संयोग से ही काव्य का उद्भव हुआ है।

करुणा के अतिरिक्त सौंदर्य का उद्दीपन भी काव्य को जन्म देता है। सौंदर्य की उपासना ही प्राणी के अस्तित्व की प्रथम एवं अंतिम साधना है। सौन्दर्य के प्रकाश की रेखाओं का स्पर्श ही सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण है। आधुनिक सौंदर्यशास्त्रीय

विचारक गोविन्द चन्द्र पाण्डेय सौन्दर्य विषयक नवीन धारणा को उद्‌भूत किया है। वे कला, संगीत, चित्र, एवं काव्य सभी में सौन्दर्य अर्थात आनन्द को मानते है। इन्होने अपनी कृति में 132 कारिकायों के माध्यम से सौन्दर्य तत्व, रूप एवं रस तत्व की विवेचना किया है।–"सौन्दर्यजनिताह्लादः सुखान्तर विलक्षणः।[4] आधुनिक काव्य शास्त्री एवं सौन्दर्यतत्वविद् आचार्य रेवा प्रसाद द्विवेदी ने 'सौन्दर्य–पंचाशिका' में 51 कारिकाओं के माध्यम से सौन्दर्य का काव्यशास्त्रीय निरूपण किया है।[5] इस विश्व में समस्त प्रेरणाओं तथा स्फुरणों का आधार है–आत्मा। आत्मा ही प्रेरक शक्ति की प्रतीक है। आत्म शक्ति ही सर्वत्र रूप रूपांतरों में विकसित होकर प्रकट हो रही है। कामना–बेलि आत्म द्रुम का ही आश्रय लेकर अपनी भव्य महिमा सर्वत्र विस्तारित करती है। आत्मा की रचना साक्षातनुभूति, कलात्मक चिंतन तथा रसात्मक रचना का मूल स्रोत है। साहित्य रचना, आत्म शक्ति का ही स्फुरण है; साहित्य सृजन में यही मूल प्रेरक शक्ति है। आत्मा का स्वरूपोन्मेष ही काव्य का प्राण है, आनंद का उन्मीलन ही काव्य का उद्देश्य है, सुखपूर्वक चतुर्वर्ग की प्राप्ति ही साहित्य का अंति प्रयोजन है।

भारतीय मनीषियों का कथन है कि जिस प्रकार आनंद के अनुभव के लिये ही विश्वस्रष्टा ने सृष्टि की रचना की है और **'एकोऽहम् वहुस्यामि'** की कामना, सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण है, उसी प्रकार रस प्राप्ति मानव–जीवन का चरम लक्ष्य है। इस आनंदपूर्ण सृष्टि से रस का अनुभव पाकर मनुष्य शब्दमय स्वरामय माध्यम द्वारा अपने 'स्व' को इतना विस्तृत और व्यापक बना देता है कि उसके लिये कोई 'पर' रहता ही नहीं। इस व्यक्तित्व के प्रसार को, इस 'स्व' के 'पर' के साथ तादात्म्य को साहित्य की भाषा में साधारणीकरण कहते हैं। रस की उपलब्धि के अनंतर रस के उन्मूलन का प्रधान साधन है साहित्य।

संस्कृत के आदि आचार्य 'भामह' की दृष्टि में साधु–काव्य का निषेवण 'प्रीति' तथा 'कीर्ति' उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त मानव जीवन के चारों लक्ष्य चतुर्विध पदार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की उपलब्धि काव्य के द्वारा सहज ही हो जाती है–

धर्मार्थ काममोक्षेषु वेचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्ति प्रीति च साधु काव्य निषेणम्।''

आचार्य कुंतक ने भामह का आंशिक रूप से अनुकरण करते हुए साहित्य का जो लक्षण प्रस्तुत किया है उससे स्पष्ट होता है कि उन्होंने आनंद को ही साहित्य की अंतिम साधना स्वीकार किया है– ''मिलित शब्द–अर्थ–युगल कवि के वक्र व्यापार से शोभित तथा सहृदयों की आनंदायी रचना बंध में विन्यस्त होने पर 'काव्य' पदवी प्राप्त करता है।'' इस प्रकार कुंतलक की दृष्टि में साहित्य का प्रयोजन सहृदयों के मानस में रसोद्रेक करना है।

आचार्य मम्मट ने अपने 'काव्य प्रकाश' में साहित्य के मुख्यतः छः प्रयोजन माने हैं–

''काव्यं यशसेद्रर्थकृते व्यवहार विदे क्षिवेतरक्षतये।
सद्यः परिनिर्वृत्तये कांतासम्मितयोपदेश युजे।।''

इसमें मुख्य प्रयोजन है 'सद्यः परनिर्वृत्ति'। काव्य पाठ के समानांतर सद्यः उत्पन्न होने वाला अलौकिक आनंद। यही उद्देश्य **'सकल प्रयोजन मौलिभूत'** माना गया है। पाठक के हृदय में अलौकिक आनंदमय रस का उन्मीलन ही काव्य का प्रमुख प्रयोजन है। काव्यानंद में रस–विभोर होते ही पाठक व श्रोता दोनों की व्यक्तित्व के बंधनों से मुक्त होकर एक ऐसी लोक–सामान्य भावभूमि में पहुँच जाते हैं जहाँ उस विषय की तन्मयता में 'रोटी का राग' और क्रांति की आग' का कुछ स्मरण तक नहीं रहता। वे एक नवीन सृष्टि बना लेते हैं जहाँ एकता में अनेकता, भेद में अभेद और व्यक्ति में सामान्य के दर्शन होने लगते हैं। गौण प्रयोजन अनेक हैं जिनमें यश, विघ्ननाथ तथा कांता सम्मित उपदेश और व्यवहार ज्ञान प्रधान हैं। काव्य, नीतिशास्त्र के समान रुक्ष उपदेश देकर ही अपनी कृत कायरता नहीं मानता। इसलिये आचार्यों ने उपदेश के साथ–साथ **'कांता सम्मितता'** का विशेषण लगाया है। बिहारी के मधुर छंद **'नहि पराग नहि मधुर मधु, नहि विकास इहि काल'** ने जो महत्वपूर्ण कार्य कर दिखाया वह अनेक शुष्क उपदेशों द्वारा भी संभव न था। इसके अतिरिक्त साहित्यकार का यश रूपी शरीर तो अजर और अमर रहता है परन्तु अर्थ, काव्य का मुख्य ध्येय नहीं है। अर्थ की प्रेरणा किसी कृति की रचना में सहायक हो सकती है–रस की सृष्टि में नहीं। अस्तु, जिस साहित्य में आनंद की सरिता प्रवाहित नहीं हो पाती, वह वस्तुतः काव्य अथवा साहित्य नहीं है। जिस काव्य को पठन व श्रवण से

स्वार्थ के संकीर्ण बंधनों से मुक्त होने की प्रेरणा नहीं मिलती तथा 'महान एक' की अनुभूति के साथ अपने आप को द्रवित द्राक्षा के समान निचोड़ कर 'सर्वस्व मूल निषेवणम्' के प्रति तीव्र आकांक्षा नहीं जाग उठती, उस साहित्य का कोई मूल्य नहीं होता।

साहित्य की प्रयोजनीयता के विषय में पाश्चात्य विद्वानों ने अनेक प्रवादों की सृष्टि की है। इसमें से मनोविश्लेषण करने वाले पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार साहित्य के मूल में मनुष्य की वे ही भावनाएं और इच्छाएं हैं जिन्हें वह समाज के नियमों अथवा अन्य प्रतिबंध के कारण वास्तविक जीवन में चरितार्थ नहीं कर सकता। अतः काव्य अतृप्त इच्छाओं की बाह्याभिव्यक्ति का एक कलात्मक मार्ग है। स्वस्थ रूप में काम का उपभोग न कर जब उसको चिंतन में परिवर्तित कर दिया जाता है तो साहित्य की सृष्टि होती है और अस्वस्थ रूप में काम अभुक्त रहकर साहित्य के मूलवर्ती भाव चित्रों की सृष्टि करता है। साहित्य में शृंगार–चित्रों की बहुलता इसी प्रवृत्ति का परिणाम है। इस संप्रदाय के विद्वानों ने अपने मत के समर्थन में शेक्सपियर तथा शैली के काव्य में इन्हीं तत्वों को ढूंढ़ने का प्रयास किया है। इस प्रकार फ्रायड ने अभुक्त कामनाओं की अभिव्यक्ति को ही साहित्य का चरम लक्ष्य माना है। परन्तु इस सिद्धान्त के अपवाद इतने प्रत्यक्ष हैं कि यह किसी प्रकार निर्भ्रान्त नहीं माना जा सकता। यदि कोई कलाकार किसी सुंदर रमणी का चित्र अंकित करता है तो इससे यह तात्पर्य नहीं कि वह कल्पना जगत में अपनी वासना की पूर्ति करता है। इसके अतिरिक्त साहित्य में करुण रस के उत्पादक प्रसंगों की भी कमी नहीं रहती, परन्तु शोक की तृप्ति इस प्रकार कोई भी व्यक्ति नहीं चाहता। इस प्रकार के एकांगी दृष्टिकोण साहित्य में भ्रम–संक्रमण का कार्य करते हैं।

फ्रॉयड के सामयिक एडलर ने मानव की चिरंतन हीनता की अथवा प्रभुत्व–शक्ति की भावना को साहित्य की मूल प्रेरणा माना है। उनके अनुसार समस्त साहित्य जीवनगत अभावों को पूर्ति है। एडरल के इस सिद्धांत में आंशिक सत्यता है क्योंकि अपनी त्रुटि के मार्जन के हेतु अनेक व्यक्तियों ने अलौकिक कार्य करने में अपनी महिमा तथा शक्ति का परिचय दिया है। अपनी पत्नी के द्वारा तिरस्कृत एवं अनाहत होकर तुलसीदास ने अपने चरित्र की त्रुटि मार्जना के निमित्त इतना ही अलौकिक कार्य किया है। परन्तु इसकी एकांगिता ही इसका सर्वप्रथम दोष है। हीनता की ग्रंथि के निराकरण के लिये हमारी प्रवृत्तियाँ नहीं होती। संसार में ऐसे भी व्यक्ति हैं जिनमें उदारता की ग्रंथि विद्यमान है और उन्होंने उत्तम साहित्य का सृजन किया है। ऐसे व्यक्तियों की प्रवृत्ति का मूल क्या हो सकता है ?

प्राचीन युग में आत्म–साक्षात्कार की वृत्ति को ही साहित्य–सृजन का मूल प्रयोजन माना गया है। साहित्य व्यक्ति के मानसिक विकास का अन्यतम प्रकार है। मानसिक विकास की गति को अक्षुण बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि हम अपने को अभिव्यक्त करते रहें। वैसे तो सभी क्रियाएं मानव की प्राण चेतना की अभिव्यक्तियाँ हैं परन्तु साहित्य उसकी एक विशिष्ट अभिव्यक्ति है जिसमें अन्य क्रियाओं की अपेक्षा स्थूलता तथा व्यवहारिकता कम और सूक्ष्मता तथा आंतरिकता अधिक होती है। इस प्रकार साहित्यशास्त्र के **अभिव्यंजनवादी सिद्धांत** में ही अंर्तभूत हो जाता है।

क्रोंचे ने अभिव्यंजनावाद को ही साहित्य का मूल प्रयोजन माना है। अभिव्यंजनावाद के अनुसार साहित्य का लक्ष्य पदार्थों की सकल या स्पष्ट अभिव्यक्ति है। क्रोंचे का कथन है कि ष्प्राचतमेपवद पे ंतजष और वह स्पष्टतया वस्तु ;डंजजमतद्ध को कोई महत्व न देकर अभिव्यक्ति को ही महत्व देता है। साहित्य के भाव पक्ष और कलापक्ष का प्रबंध क्रमशः वस्तु या भाव तथा अनुभूति को व्यक्त करने की प्रणाली विशेष से है। किंतु यदि अनुभूति ही नहीं होगी तो अभिव्यक्ति किसकी की जाएगी ? 'अभिव्यक्ति अभिव्यक्ति के लिये' का कोई स्पष्ट अर्थ ही नहीं है। क्रोंचे के मत में अभिव्यंजना द्रव्य अथवा भावात्मक वस्तु ;म्उवजपअम उंजजमतद्ध की मानस मूर्ति विद्यमान है। अभिव्यंजना का यह स्वरूप प्रचलित व्यवहार पद्धति के सर्वथा प्रतिकूल है और इसलिये इसका औचित्य भी नित्य है। क्रोंचे का मानस दर्शन न तो प्राच्य मनोविज्ञान से मिलता है और न ही पाश्चात्य मनोविज्ञान से ही। क्रोंचे ने सामान्यतः भाव को स्वीकार नहीं किया, यदि किया भी है तो उसे ज्ञान सामान्य का पूर्ववर्ती माना है, जो ठीक नहीं कहा जा सकता। पहले **''जानाति ततः इच्छति''** यही क्रम सर्वसम्मत है और कुंतक इसी के अनुयायी हैं।

इस प्रकार यूरोप का यह सिद्धांत साहित्य के प्रयोजन के संबंध में एकांगी और अपूर्ण दृष्टिकोण को लिये हुए हैं। एक पक्ष की सर्वथा उपेक्षा यूरोपीय सिद्धान्तों की अंतः शून्यता को प्रमाणित करती है। परन्तु भारतीय मनीषियों का दर्शन कभी एकांगी नहीं रहा। सब पक्षों को लेकर चलने की उनकी प्रवृत्ति रही है। भारतीय विचारधारा में साहित्य सदा लोकहित से समन्वित रहा

है। मनुष्यों को मानवता के उच्च स्तर पर ले जाना ही सत् साहित्य का मान्य प्रयोजन है। जीवन के आवेष्टन में क्या शुभ है और क्या अशुभ, क्या सुंदर है और क्या असुंदर ? इसकी ओर निर्देश करना ही काव्य का अन्तिम लक्ष्य है। उस अपार विश्व के साथ जो साक्षात् हमारे प्रयत्नों का क्षेत्र नहीं है रागाात्मक संबंध स्थापित करके काव्य हमारे प्रयत्नों का प्रसार करता है। अस्तित्व का प्रसारक होने के कारण सब प्रकार का साहित्य शकुंतला की सुरभित कॉमेडी और हार्डी कृत 'टैस' की करुणा विगलित ट्रेजडी हमारे आनंद का हेतु होती है। साहित्य का सर्वस्व ही रसोन्मेष है। सहृदय में रागात्मक वृत्ति अथवा आनंद का उन्मीलन करना साहित्य का प्रमुख प्रयोजन है। रस ही शिव है, सत्य है तथा सुंदर है। रसादशा सर्वथा आनंदकारिणी शिव है, सत्य है। रस के उन्मेष में कारण–भूत साहित्य के समग्र उपकरण इसी निमित्त से ग्राह्य एवं अनुग्राह्य होते हैं।

अस्तु साहित्य अपूर्ण मानव की पूर्णतः प्राप्ति की साधना है। सूक्ष्म से महान के मिलन की पावन गति है। साहित्य साधना सदैव मानव को उसके चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर करती रहती है। संतप्त वाणी से विश्वासों पर राष्ट्र भारती के विवरण आंसुओं पर, प्रसुप्त राष्ट्र को जागृत करना, पथ–भ्रष्ट मानवात्माओं को पुनीत तथा सनातन पथ की ओर अग्रसर करना, मानस के विचारउर्मियों के मुख में संस्कृति की चिरंतनता का दिव्य स्वर भरना, वस्तुतः साहित्य का चरम लक्ष्य है।

संदर्भ

1. सुमित्रा नन्दन पंत 'परिवर्तन'।
2. तुलसीदास रामचरितमानस–बालकाण्ड 14/9
3. मुण्डकोपनिषद 1/1/7

   यथोर्णनाभिः सृजते गृह्यते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।

   यथा सतः पुरूषात् केशलोमानि तथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्।।
4. गोविन्द चन्द पाण्डेय–सौन्दर्य दर्शन विमर्श 2/5 पृ 141
5. रेवा प्रसाद द्विवेदी सौन्दर्य पंचाशिका, भूमिका– पृ 1

प्राचार्य

आर.डी.एस. पी.जी. कॉलेज कुसांव, भाऊपुर जौनपुर

●●●●●